Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 2 | ISSN : 2581- 6306

नैषधीयचरितम् में अद्वैत वेदान्त की अवधारणा

डॉ0 (श्रीमती) मधु सत्यदेव
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर,उत्तर प्रदेश, भारत

शोध आलेख सार – नैषध में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख है। श्री हर्ष समस्त दर्शनों के अद्वितीय विद्वान थे। श्री हर्ष ने वेदान्त तथा वैष्णव के पूर्वोक्त मतों का समन्वय किया है। विष्णु पूजा करते हुए नल स्तुति करते हैं; ''युक्तिसंगत शास्त्रों तथा उपनिषदों के सर्वरवल्विद ब्रह्म इत्यादि प्रमाणों से जगत् की समस्त वस्तुओं में एक ही सत्ता भासमान् होती है, अतः उनमें कोई भेद नहीं माना जा सकता, किन्तु आपकी इच्छा के कारण, जो अनिर्वाच्य अनाद्य अविद्या रूप है, प्रत्येक वस्तु पृथक् ही प्रतीत होती है। श्री हर्ष की रचना भी इसी प्रवाह के साथ चली है।

मुख्य शब्द– नैषधीयचरितम्, अद्वैत वेदान्त, संस्कृत, दार्शनिक,साहित्य, महाकाव्य।

नैषध में विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों का उल्लेख है। श्री हर्ष समस्त दर्शनों के अद्वितीय विद्वान थे। उनके तर्क अप्रत्यारवेय होते थे।[1] उन्होंने दर्शनों का केवल शास्त्रीय ज्ञान ही नहीं प्राप्त किया था, अपितु श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा दर्शन को अपने जीवन का अंग ही बना लिया था। उनकी अपने प्रति जो समाधि में आनन्दसागर परम् ब्रह्म का साक्षात्कार करता है – या साक्षात्कुरूते समाधिपरंब्रह्म प्रमोदार्णवम्।''[2] मात्र गर्वोक्ति ही नहीं तथ्योक्ति है। क्योंकि ब्रह्म के सत् चित् तथा आनन्द तीनों प्रकार के स्वरूप का साक्षात्कार हुए बिना किसी विद्वान से भी समस्त ज्ञान का स्फुरण असम्भव था। वेदान्त दर्शन में आत्मा को सर्वथा अद्वैत बताया है। अद्वैत के इस मत का श्री हर्ष ने नैषध में वर्णन किया है।

वेदान्त दर्शन के मतानुसार यह आत्मा जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में अदृष्टवश सुख–दुःख आदि भोगों को भोगता है उसी प्रकार स्वप्नावस्था में भी पूर्व कर्मों के अधीन हो नाड़ियों से निकलकर तथा पूर्व शरीर को यथास्थान पर ही प्राणवायु द्वारा रक्षित अवस्था में छोड़कर इधर–उधर स्थानों में नूतन देह धारण करते हुए स्वप्नकाल के विषयों को भोग करके पुनः पूर्व स्थूल शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। वृहदारण्यक उपनिषद् का स्वप्न के विषय में यही मत है।''[3] शंकराचार्य ने वृहदारण्यक मंत्र का भाष्य करते हुए लिखा है कि ''स्वयं प्रकाश आत्मा इन्द्रियों के उपरत हो जाने पर स्वप्न देखा करता है।[4]

स्वप्नविषयक इस सिद्धान्त का प्रयोग नैषध में किया गया है। दमयन्ती को साक्षात् कभी न दिखाई पड़े हुए नल भी स्वप्न में दिखाई पड़ जाते थे। इस रहस्य की व्याख्या करते हुए श्री हर्ष लिखते हैं – ''निद्रा दमयन्ती के निमीलित नेत्रों से तथा बाह्येन्द्रियों के सुप्त हो जाने पर सम्पुटित हृदय से छिपाकर कभी न देखते हुए भी उस राजा को बड़े रहस्य के रूप में दमयन्ती को दिखाती है।[5]

वेदान्त दर्शन के अनुसार आत्मा या ब्रह्म इन्द्रिय सम्वेदन, बुद्धि विकल्प और वाणी के शब्दों द्वारा अग्राह्य निर्विशेष आत्मचैतन्य अपरोक्षानुभूतिगम्य है। सापेक्ष बुद्धि ज्ञाता ज्ञेय ज्ञान की त्रिपुटी के अन्तर्गत कार्य करती है और अपनी चार कोटियों के सहारे कार्य करती है। आत्मतत्त्व इस त्रिपुटी के और बुद्धि कोटियों के ऊपर है, उनका अधिष्ठान है। अतः अद्वैत ब्रह्म बुद्धि ग्राह्य नहीं हो सकता है। नैषध में श्री हर्ष ने ब्रह्म को अवाङ्मनसगोचर बताया है। इसका वर्णन करते हुए वे कहते हैं, ''उन–उन विषयों को ग्रहण करने वाले विदर्भराज राजकुमार की सखियों के नेत्र अनिवर्चनीय उस एक हंस को उस प्रकार प्राप्त हुए, जिस प्रकार योगियों के चित्त अनिवर्चनीय रूप वाले एक ब्रह्म को प्राप्त होते है।''[6]

छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय में सनत्कुमार मंत्रविद् नारद को आत्मा के वास्तविक रूप का परिचय देते हैं और विस्तार के साथ बताते हैं कि किस प्रकार आत्मा सारे भौतिक पदार्थों तथा मानसिक, कार्य–कलापों से परे है। वाक्, मनस, संकल्प, चित्त, ध्यान, विज्ञान, बल, अन्न, आप, तेजस, आकाश, स्मृति, आशा, प्राण, सबसे आत्मा उत्कृष्ट है तथा आत्मा से ही इन सब की सत्ता है, वह ऊपर नीचे इधर उधर सर्वत्र है।[7] इस भाव को नैषध में बड़े पाण्डित्य के साथ एक ही श्लोक में निहित किया गया है–दमयन्ती उस समय उपनिषद् विद्या के समान हो गयी थी, जिस प्रकार उपनिषद् विद्या, पृथ्वी, आग, तेज,

वायु, आकाश, काल, दिक तथा मन इन आठों द्रव्यों की सत्ता का एक साथ निराकरण करती है उसके अभिप्राय बड़े गूढ़ होते हैं। वह व्याकरण आदि छः शुभ–अंगों से युक्त होती है तथा अनिवर्चनीय रूपवाले ज्ञान–विधि, असीम आनन्दमय एक परम पुरुष में ही तल्लीन रहती है। उसी प्रकार दमयन्ती ने वैभव सम्पन्न दमयन्ती प्राप्ति की आशा लिए अद्वितीय गुणों वाले असंख्य तेजस्वी देवताओं तथा राजाओं को त्यागा। अपने अभिप्राय को छिपाये वह सुन्दरी भी अवर्णनीय सौन्दर्य वाले, ज्ञानराशि, असीम उत्साह युक्त किसी पुरुष विशेष में तल्लीन थी।[8]

शास्त्रादि अभ्यास तथा योग आदि के द्वारा संसार के आवागमन को दूर करने में समर्थ ज्ञान को पाया हुआ योगी अपने को स्वप्रकाश सच्चिदानन्द स्वरूप अहं ब्रह्मास्मि अर्थात् ''मैं ब्रह्म हूँ'', ऐसा जान लेता है और वैसा जानकर पूर्व संस्कारों से या प्राप्त ब्रह्म ज्ञान से सत्त्वादि गुणत्रयरूप एवं संसारोत्पादिनी अनादि अविद्या को पृथग्भूत जानकर मैं पहले मनुष्य का इत्यादि जानता है और इस प्रकार आत्मा तथा प्रकृति को विवेक के द्वारा जानकर बाते करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में श्री हर्ष कहते हैं '' इसके बाद यह नल मुनि के समान प्रबोधयुक्त हुए अपने स्वरूप (''मैं नल हूँ'' ऐसा) को प्रकाशित करते हुए समझ कर प्रकृतिस्थरोदन तथा विलापादि से रहित उस दमयन्ती को देखकर फिर संस्कारों को प्राप्त करने से वचन बोले।''[9]

ब्रह्म प्राप्ति अथवा आत्मदर्शन के उपाय, विविध तथा साक्षात्कार दशा का विस्तृत विवेचन ही वदान्त दर्शन का प्रतिपाद्य है। श्री हर्ष ने ब्रह्म साक्षात्कार की इस पद्धति का कई बार उल्लेख किया है। दमयन्ती हंस को पकड़ने की इच्छा रखती है, ''इस दमयनती ने सन्निहित तथा चलते हुए हंस को भययुक्त हाथ से पकड़ने के लिए यत्नपूर्वक अपने शरीर में उस प्रकार निश्चलता को प्राप्त किया, जिस प्रकार सम्यक् रूप से ध्यान किये गये तथा शरीर में विचरते हुए परमात्मा को आदरावित् आशय से अर्थात् सादर ग्रहण करने के लिए मुनि की मनोवृत्ति यत्नपूर्वक निश्चलता प्राप्त होती है।[10]

वेदान्त के अनुसार सूक्ष्म शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, एक बुद्धि और एक मन में संग्रह अवयव रहते हैं। इन सबके मन के एक प्रधान तत्त्व होने के कारण कभी–कभी मन को ही लिंग शरीर कहा जाता है।''[11] मरण के समय सर्वप्रथम आत्मा शरीर से निकलता है, फिर प्राण, फिर सारी इन्द्रियाँ, इसके बाद स्थूल शरीर मृत हो जाता है। वृहदारण्यक उपनिषद् में इसका उल्लेख है। इसी परिप्रेक्ष्य

में श्री हर्ष नैषध में दमयन्ती की शोक दशा का वर्णन करते हैं। स्वयं दमयन्ती का कथन है, ''ये युग बीत रहे हैं, क्षण नहीं बीत रहा है, क्योंकि निश्चय ही कान्त अन्तरात्मा में मुझे नहीं छोड़ेगा और उसे मेरा मन नहीं छोड़ेगा तथा उस मन को कायवायु अर्थात् शरीरस्थ प्राणवायु नहीं छोड़ेगा। इस प्रकार परम्परा के सर्वदा बने रहने से मेरी मृत्यु भी दुर्लभ है।[12]

इन उदाहरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि श्री हर्ष रचित नैषधीय चरितम् में अद्वैत वेदान्त दर्शन का प्राचुर्य है। इसीलिए श्री हर्ष ने ब्रह्म साक्षात्कार की उपनिषदों से लेकर वेदान्त के टीका ग्रन्थों में वर्णित पद्धति का कई बार उल्लेख किया हैः—

1. स्वर्णिम हंस के अकस्मात् उपवन में दमयन्ती के पास उतरने पर दमयन्ती की सखियों के नेत्र अपनी उस दृश्यमान् वस्तुओं को त्याग कर उस वर्णनातीत रूप वाले हंस में ऐसे जा लगे जैसे योगियों के चित्त सभी विषयों को त्याग कर अवाङ्मनसगोचर ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।[13]
2. फिर जैसे अपने शरीर में ही सन्निहित ब्रह्म का आदरातिशय के साथ साक्षात्कार करने के लिए मुनि की मनोवृत्ति निश्चल हो जाती है, उसी प्रकार पास में चलते हुए उस हंस को डरते हुए हाथ से पकड़ने की अभिलाषा से दमयन्ती भी प्रयत्नपूर्वक निश्चल बन गयी है।[14]
3. नारद के आकाश मार्ग को पार कर इन्द्रपुरी में पहुँचने का वर्णन श्री हर्ष करते हैं—'देवर्षि अनन्त आकाश को पार कर इन्द्र भवन में पहुँच गये, जैसे योगी अनादि भव—सागर को पार कर आनन्द निर्भर ब्रह्म को प्राप्त करता है।''[15]
4. दमयन्ती के करुण रोदन को सुनकर भावोद्रेक में अपने को प्रकट कर नल जब प्रकृत दशा में आते हैं, उस समय जैसे कोई मुनि आत्मज्ञान प्राप्त कर अपने प्रकाशस्वरूप को तथा प्रकृति को पृथक जानता है, उसी प्रकार प्रबोध आने पर नल ने अपने वास्तविक रूप को प्रकट करते हुए जाना तथा दमयन्ती को सुस्त देखकर कहना प्रारम्भ किया — आत्म ज्ञान होने पर मुनि को आत्मा तथा प्रकृति को सत्ता का ज्ञान हो जाता है।[16]

स्वयंवर समाज में पाँच नलों को देखकर दमयन्ती को सत्य नल का निश्चय ही न हो सका। कवि ने सुन्दरी की उस अवस्था के प्रति उत्प्रेक्षा की है—जैसे मतों के भेद होने पर लोगों को पंचम कोटि

अद्वैततत्त्व पर भी, यद्यपि यह सत्य है, विश्वास नहीं होता तथा अन्य चार लोगों के विश्वास न होने देने के लिए यत्नशील रहते है, उसी प्रकार दमयन्ती को भी कई नल होने के कारण नल विषयक सन्देह होने पर पाँचवें स्थान पर बैठे हुए वास्तविक नल में भी विश्वास न हुआ, क्योंकि दमयन्ती को पाने की अभिलाषा से चार समान रूप वाले नल उस विश्वास को होने ही नहीं देते थे।[17]

वेदान्तियों को माया के कारण बाह्यतः भेद दिखाई पड़ता है। इसे ही विष्णु की इच्छा का विलास कहते हैं।

श्री हर्ष ने वेदान्त तथा वैष्णव के पूर्वोक्त मतों का समन्वय किया है। विष्णु पूजा करते हुए नल स्तुति करते हैं; ''युक्तिसंगत शास्त्रों तथा उपनिषदों के सर्वरवल्विद ब्रह्म इत्यादि प्रमाणों से जगत् की समस्त वस्तुओं में एक ही सत्ता भासमान् होती है, अतः उनमें कोई भेद नहीं माना जा सकता, किन्तु आपकी इच्छा के कारण, जो अनिर्वाच्य अनाद्य अविद्या रूप है, प्रत्येक वस्तु पृथक् ही प्रतीत होती है।[18] वेदान्तियों ने मुक्ति की अवस्था में ब्रह्म की सत्ता मानी है।

10वीं शताब्दी तक भारत में अद्वैत वेदान्त की दार्शनिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा स्थापित हो चुकी थी। सहिष्णु, उदार भारतीय दार्शनिकों ने अन्य मतों का भी सम्मान के साथ उल्लेख किया है किन्तु इस युग तक आते–आते भारतीय दर्शन की मुख्यधारा अद्वैत वेदान्त की हो चुकी थी। श्री हर्ष की रचना भी इसी प्रवाह के साथ चली है।

सन्दर्भः–

1. घर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः।।

   नैषधीय चरितम् 22/153
2. वही, 22/153
3. प्राणेनरक्षन्नवरं कुलायं बहिष्कुलायदमृतश्चरित्वा।
   स ईयते मृतो यत्र काम हिरण्मयः पुरुष एक हंस।।

   वृहदारण्यकोपनिषद 4/3/12
4. उपर तेषु हीन्द्रियेषु स्वप्नान पश्यतिइत्यादि।

   शंकर भाष्य 5/4/15
5. नैषध चरितम् 1/40
6. नेत्राणि वैदर्भसुतासखीनां विमुक्ततर्क्तादूषयग्रहाणि।

प्रापुस्तमेक निरूपात्यरूपं बहमेवचेतांसि यतव्रतानाम्।।

नैषधीय चरितम् 3/3

7. छान्दोग्य उपनिषद् अध्याय–7

8. नैषधीय चरितम् 11/129

9. मुनिर्यथात्मान मथ प्रबोधवान् प्रकाशयन्त स्वयबुध्यता
अपि प्रपन्नां प्रकृति विलोक्य तामवाप्तसंस्कारतयाऽसृजदिन्रः।।

नैषधीय चरितम् 5/121

10. हंस तनौ सन्निहितं चरतं मुनेमनोवृत्तिरिव स्विकायाम्।
ग्रहीतु कामादरिणा शयेन यत्नादर्सो निश्चलता जगाहे।

नैषधीय चरितम् 3/4

11. मनः प्रधानत्वात् लिंग्य मनः लिंगमित्युच्यते।

शंकर भाष्य वृहदारण्यकोपनिषद् 4/4/6

12. अमूनि गच्छन्ति युगानिनक्षणः कियत्सहिष्ये न हि मृत्युस्ति में।
स मां न कान्तः स्फुटमन्तरूज्झिता न तंमनस्तच्च न कायवायवः।।

नैषध चरितम् 9/94

13. नैषधयीय चरितम् 3/3

14. नैषध 3/4

15. स व्यतीत्य वियदन्तरगाधं नाकनायक निकेतनमाप।
सम्प्रतीर्य भवसिन्धुमनादि ब्रह्म शर्मभरचारूयतीव।।

नैषध 5/8

16. मुनिर्यथात्मानमथप्रबोधवान् प्रकाशयन्तं स्वमसावबुध्यत।
अपि प्रपन्नां प्रकृति विलोक्य तामवाप्तसंस्कारतयासृजदिगरः।।

नैषध 9/12

17. साप्तुंप्रयच्छतिन पक्षचतुष्टये तां तल्लामशंसिनि नपंचकोटिमात्रेः।।
श्रंद्धांदधे निषधराऽ् विभतौ मतानाम द्वैततत्त्वइवसत्यतरेऽपि लोकः।।

नैषध 13/36

18. नैषध 21/107